"कीचड़"

किच्चड़ अर्थात कीच यानि के जब कीच कचरे-मिट्टी में पड़ा-पड़ा गाड़ा हो कर जमने लगता हैं, चिपचिपा हो कर गौंद जैसा, तो वह धीरे-धीरे किच्चड़ भयानकता का स्वरूप धारण करता जाता हैं और ऊपर से तो वो सूख कर सूखी

हुई धरती जैसा मटमैला दिखने लगता हैं । जिसे देखने पर भूमि का ही भ्रम पैदा होता हैं लेकिन जब कोई उस पर से गुजरने लगता हैं तो वह अपने ही भार से उस मे धसने लगता हैं और फिर जैसे-जैसे उस से निकलने के लिये जीव जोर लगाता हैं तो चिपचिपा गाढ़ा होने के कारण वह उसे अपने ही अन्दर खीचने लगता हैं - अब जीव जीतना अधिक जोर लगा कर निकलना चाहता हैं तो वह उसे उतने ही दुगने वेग से और अन्दर ही अन्दर गहरा धसता चला जाता हैं - यहां तक की जीव थक कर स्थिल पड़ने लगता हैं और फिर धीरे-धीरे उसका दम भी घुटने लग जाता हैं - यहां तक की उस की मृत्यु ही हो जाती हैं और उस का कुछ भी पता ही नंही चलता और फिर वह भी उस किच्चड़ भयानक का ही एक हिस्सा बन जाता हैं - सदा के लिये और फिर उस का वजूद सदा के लिये लुप्त ही हो जाता हैं .....!

ठीक यही क्रिया जीव के साथ भी होती हैं जब वह मनुष्य जन्म में धरती पर अवतरित होता हैं । जीव का कोई लिंग भेद नंही होता वो तो अपने मूल जैसा वैसा ही अन्नत समर्थ विशेष जन्म-मरण रहीत पूर्ण पवित्र ही होता हैं, सदा निरन्तर निश्चित अटल - देखने पर वह भार रहित एक सुन्दर गोल अत्यन्त महीन चमकिला कण सा प्रतीत होता हैं जो एकदम सफेद सा दिखता हैं लेकिन ध्यान से देखने पर उसमे हल्का सा आकाश का नीला रंग महसूस होता हैं अत्यंत गहराई में । इसे किसी भी यन्त्र

इत्यादि तरीको अथवा कोशिषो से देखा या जाना नंही जा सकता । यह जर्रा महीन केवल दूसरे जर्रे विशेष यानि की आत्मा से ही देखा-ज़ाना अनुभव किया जा सकता हैं । इस का प्रकाश अर्थात क्षमता भी अनन्त जैसी ही हैं जिस के आगे अनन्त सूर्यो की क्षमता प्रकाश का भी कोई अर्थ ही नंही हैं .....! जैसे की समुद्र एक जल का विशाल भण्ड़ार हैं तो उस की एक छोटी सी बूंद भी बिलकुल ठीक वैसी ही हैं जैसा कि " मूल " का भण्ड़ार विशेष " रूबरू " ।

जीव जब मातृ गर्भ जून में आता हैं जन्म हेतु तो सुप्त अवस्था में ही होता हैं । फिर उसे धीरे-धीरे जागृत किया जाता हैं । जैसे-जैसे उस की चेतना लौटती हैं उसे अपने चारो ओर व्यापत कीच का अहसास होता हैं और साथ ही साथ उसे अपनी मजबूरी भी अनुभव होती हैं और फिर ड़र भी लगने लगता हैं - फिर बड़ते-बड़ते वो इस स्थिति से छूटने के लिये तड़पता हैं - पर छूटना तो दूर रहा वो तो हिलायी नंही सकता, फिर अन्दर ही अन्दर वो चिखता-चिल्लाता हैं - पर वंहा उसकी पुकार सुनने वाला कौन हैं भला .....? फिर धीरे-धीरे उस की चेतना बड़ने लगती हैं तो आस-पास की भयानकता उसे ओर ड़राने लगती हैं । फिर धीरे-धीरे उसे अपने किये कर्मो का नतिज़ा दिखने लगता हैं और फिर बड़ते-बड़ते उसे अनन्ता-नन्त नतिज़ो की भयानकता का आभास होता हैं और उसकी तड़प फिर बड़ती ही जाती हैं - और फिर उस

का दम वंहा घुटने सा लगता हैं – और फिर उसे अपनी मौत का सा अहसास होने लगता हैं । उसे लगता हैं कि वो अब मर ही जायेगा – जो कि आज तक अपने को सदा से अमर ही समझता आया हैं । फिर उसे अपनी कमिनियतों का अहसास होने लगता हैं – जिसका तो उसे कोई अन्त ही नज़र नंही आता – इस से उसका ड़र ओर बड़ने लगता हैं – और फिर कुछ समझ ना आने के कारण वो तड़पता हुआ निरन्तर कांपने सा लगता हैं । निरन्तर कांपता हुआ अन्दर ही अन्दर चिल्लाता मदद की लम्बी-लम्बी गुहारें लगाता हैं । पर इन सब का कोई भी नतीज़ा नंही निकलता – फिर उसे इस बदहवासी में दौरे से पड़ने लगते हैं और वो बेहोश सा होने लगता हैं । वो हर कीमत पर इस दुरगन्ध से भरी कीच से आजाद होना चाहता हैं – पर तड़प कर केवल मात्र हिल कर के ही रह जाता हैं – जब उसकी तड़प दम घुटने की चरम सीमा पर होती हैं तो उसे अहसास होता हैं कि वो क्या था और अब क्या हो रहा हैं, इस भयानक नर्क में उस के साथ और फिर आगे-आगे पता नंही और क्या-क्या होगा .....? फिर वह अपने को निरन्तर कोसने लगता हैं और अपनी ही कमाई हुई कमिनियतों को याद कर-कर के रोने बिलखने सा लगता हैं – और ईस नर्क भयानक कुम्भी-पाक से छूटने हेतु कुछ भी करने को तैयार हो जाता हैं – और अपने को मर्यादित करने के वायदे करने लगता हैं – निरन्तर गिड़गिड़ता हुआ – चापलूसी करता कसमें खाने

लगता हैं । फिर इधर-उधर तड़पता हुआ अच्छा बन्ने की गुहारें लगाता हैं - जिसे आप शुभ करार देते हुऐ बच्चे का किक लगाना कहते हैं .....!

लम्बी-लम्बी बेहोशियों और तड़पने के बाद उसे अहसास होने लगता हैं कि कोई उसके बिल्कुल पास ही हैं - जो उसे अनन्त तंदूरी अग्नि की तपस से निरन्तर बचाये हुऐ हैं और पल-पल उसे मरने से भी बचा रहा हैं .....! वो कौन हैं - ये उसे कभी भी पता नंही चलता । परन्तु उसे अपने जिन्दा होने का अहसास निरन्तर सन्तावना देने लगता हैं और वो फिर धीरे-धीरे मन ही मन अपने को कोसता और कस्में खाता-स्वंय को सदा इन कुरितियों से दूर रखने का वायदा विशेष करता - शांत हो कर उसे ही जपने-आराधने लगता हैं जो उसे निरन्तर अपने पास होने का अहसास कराता हैं .....!

आखिर उसकी पुकार सुनी जाती हैं - और फिर उस के पूरा होना का भी समय आता हैं यानि के उसके इस कुम्भी-पाक नर्क रूपी गर्भ जून से बाहर निकलने का समय - यानि के जीव का सर्वश्रेष्ठ जून मनुष्य रूप में अवतरित होने का " काल " .....?

पहले तो उसे यकीन ही नंही होता - फिर इस भोगे हुऐ नर्क का गहरा और निरन्तर अहसास होने पर वो तड़पता और चिल्लाता हुआ फिर से कांपने लगता हैं और इसे लगता हैं - कि

कंही फिर से कोई दूसरा नया खोफ़ सामने ना आजाये .....! जिसके ड़र से वो फिर से आँखे मूंद लेता हैं – और कुछ भी देखना या जानना नंही चाहता .....! सहमा हुआ सा फिर से उसी समाधी में लीन हो जाता हैं जिस से उसे बाहर निकाल कर थप्पड़ मार कर के जगाया गया था .....!

अब धीरे-धीरे उसे मोह-ममता का अहसास होने लगता हैं साथ ही साथ वो अपनी पूर्व स्थिति से भी दूर होने के कारण सभ कुछ भूलने सा लगता हैं और बड़ी-बड़ी किलकारियां मारता हुआ आकाश की ओर देखता उछलता सब कुछ समेट लेने का अहसास करता-जताता दौड़-दौड़ कर सब को प्रभावित करता - पिछला सब कुछ पूरी तरह से भुला कर एक नये ही प्रकार की मोह-माया-ममता से लबालब भरे हुऐ किचड़ में डूबता-उतरता आखिर पूरी तरह से उस में डूब ही जाता हैं .....!

अब जैसे-जैसे ईन्द्रियों से जीव बलवान होता हैं – उन के गाढ़े अहसास की वज़ह से, वो पूरी तरह से निरन्तर उन्हे भोगता हुआ पूरा का पूरा इन में डूब ही जाता हैं – चाहे वो आँखों से रूपो का विषय हो या कानो का ईष्या-निन्दा-गाना-बजाना हो गले से अथवा ज़ुबान के अनन्त स्वादों का विषय विशेष हो या काम वासना की कामनाओं-ईच्छाओं का सिलसिला ही क्यों न हो – जो सब कभी भी पूरा होना तो दूर रहा कभी भी खत्म होने का अहसास ही नंही करने देता ।

➢ये " मन विशेष " ही हैं जो काल का अंश हैं बिल्कुल आत्मा के ही जैसा निरन्तर आत्मा में ही

समाया रहता हैं – जो जन्म से ही एक गुप्त रिकार्ड़र की तरह से जीव का निरन्तर सभी कार्यों विशेषो का हर पल सोच से ले कर ईन्द्रियों के व्यवहारों तक का लेखा-जोखा नतिजों सहित लगातार दर्ज करता जाता हैं .....!

पहले मोह-माया-ममता का कीचड़ और फिर ईन्द्रियों के स्वादों का निरन्तर भोग रूपी महा कीचड़ – जिस का कभी भी किसी को कोई अन्त ही नंही मिला हैं, अगर मिला हैं तो केवल प्राण शक्ति के खत्म होने का अहसास और फिर से एक नये प्रकार के कुम्भी-पाक रूपी महानर्क की शुरूआत .....? यह एक ऐसा भयानक सिलसिला हैं जो एक बार शुरू हो जाये तो फिर यह थमने का नाम ही नंही लेता – अनन्त काल तक जीव अनन्त निकृष्ट योनियों में लगातार भम्रण – केवल प्रत्येक जीव की निजी ईच्छाओं- कामनाओं और स्वादों विशेषों के ही अनुसार भोगना-भोगना और केवल सिर्फ भोगना यानि के भुगतना-तड़पना-भुगतना और केवल भुगतना – खुशी से केवल जीव की अपनी निजि विशेष-विशेष ईच्छाओं कि पूर्ति हेतु .....!

" वडे भाग मनुष्य तन पावा – सुर दुर्लभ सब ग्रन्थ गावा । इस पउडी ते जो नर चूके – आई जाई बहुत बहुत दुख पाईदा.....। "

मन महाकाल का अंश हैं जो सूक्ष्म अग्नि रूपी विशेष तत्व से प्रत्यक्ष होता हैं जो लगभग आत्मिक चरित्र - क्षमता जैसा ही समृद्ध विशेष हैं - पर इस का कार्य विशेष कुछ भिन्न से प्रकार का हैं । आत्मा की दूरदर्शिता हेतु एक कुदरत का विशेष करिष्मा ही हैं । जो केवल सदुप्योग की स्थिति विशेष में ही जीव को गुणकारी और लाभकारी साबित होता हैं - और जीव की पहुंच को फिर से उसे इस किच्चड़ से निकाल कर - मूल के रूबरू प्रत्यक्ष साबित कर - उसे सदा के लिये सभी अपवादों-दुखों-तड़पों से मुक्त करा - सनतुष्टि प्रदान करा देता हैं .....! और खुद भी अपने मूल अकाल के निजि स्वरूप विशेष महाकाल के गाल में सदा के लिये - फिर से प्रगट होने हेतु समा जाता हैं .....?

इस की प्रत्यक्षता का अनुभव अत्यन्त हलका सुनहरी - पीला सा होता हैं - परन्तु आत्मा में स्थित होने के कारण इसे अलग से कभी भी नंही जाना-पहचाना जा सकता । केवल वही आत्मा विशेष इसे जानती हैं जो प्रकृति के पांचो तत्वों से स्वयं को मुक्त विशेष कर लेती हैं - जो कि असंभव जैसा केवल दुर्लभ विशेष ही हैं । क्योकिं सूक्ष्म प्रकृति लगभग सभी जगह अर्थात इस सृष्टि रूपी साफ्टवेयर के प्रत्येक कण में मौजूद विशेष हैं - अत्यन्त विलक्षण प्रकारों-ढ़ंगों-विशेषो के रूपों में - क्षमता-स्मर्थाओं-मांगों की पूर्तियों की तरह-तरह से -निरन्तर-लगातार.....!

आज जीव जो भी करता हैं मन की खुशी हेतु ही करता हैं, आप किसी से भी पूछ कर देख लो.....? मन ईन्द्रियों का गुलाम बन चुका हैं - क्योंकि मन लज्जत यानि के स्वादों भोगो का आशिक हैं । इस लिये हर वक्त निरन्तर इन्ही में ही विचरता-डूबा रहता हैं । और बुद्धि केजरिये आत्मा को समझाता - भुझाता रहता हैं - क्या ठीहैं, क्या ठीक नंही हैं । आत्मा भी इन्ही स्वादों के चक्कर में आदी हो कर गुलामी का जीवन जीने को मज़बूर हो जाती हैं । सभी स्वाद-भोग केवल तभी मिलते हैं जब उन की कीमत चुकायी जाये । मन कंगला हैं और ईच्छाओं-कामनाओं का आदि हो चुका हैं - जन्मों-जन्मों से भोगों-स्वादों के चक्कर में स्वंय को पूरी तरह से डुबा चुका हैं इस भयानक महा किचड़ में । इसिलिये बिल चुकाने हेतु उसे किसी भण्ड़ारी की आवश्यकता पड़ती हैं - यह कार्य वो आत्मा को हिस्सा विशेष दे कर पूरा कराता हैं अर्थात बिल केवल आत्मा के नाम का ही फटता हैं - और फिर इस बिल के भुगतान की पूर्ति हेतु ही आत्मा को अनन्त जूनों-नर्कों विशेषो में चिल्लाना-तड़पना विशेष-विशेष पड़ता हैं - आनन्तानन्त काल विशेष के लिये .....! सभी प्रकार की ईच्छाओं-कामनाओं-स्वादों का केवल यही अनज़ाम विशेष हैं .....?

" कहे प्रभ अवर-अवर किछ कीजे । सब बाद सिंगार फोकट फोकटइया ।

किया सिंगार मिलण के ताई - प्रभ लियो सुहागिन - थूक मुख पइया.....! "

अर्थात प्रभु तक पहुंचने हेतु एक दुर्लभ मौका विशेष मिला था मनुष्य जून के रूप में - वो सब तो खर्च विशेष कर दिया । (भोगो-विलासो - गद्धियों को बिछाने - बैठने - पंथो को चलाने - पढ़ने-पढ़ाने - गुरू-सत्गुरू बनने - कहलाने - बनाने - धर्मों-कर्म काण्ड़ों - वेषों - भेषो - चलाकियों - भेखो - ठगियों - लूटने - इकट्ठा करने - अधिकारो को बड़ाने - सृष्टि के प्रत्येक सूक्ष्म से सुक्ष्म अंगो को विभिन्न प्रकारो से नंगा बलात्कार करने - फिर सब कुछ तरह-तरह के प्रकारों विशेषो से उन्हे छुपाने - मुकरने इत्यादि-इत्यादि में ही बिता दिया पूरा ज़ीवन अर्थात न प्रभु तक जीव पहुंच पाया ।) न सुहागण बन सका - बल्कि नतिजो के रूप में - अत्यन्त कमीनी से कमीनी जूनों-नर्कों से भरी " भयानक थूक विशेष " अपने सुन्दर से दुर्लभ मुखड़े विशेष पर सदा के लिये चिपकवा सी ली हैं आत्मा विशेष ने नतिजे विशेष के रूप में और अब इसे लगातार चाटने विशेष के इलावा इस के पास अब ओर कोई कुछ भी चारा ही नंही बचा हैं करने के लिये .....?

इस मनुष्य रूपी " जीवन रथ " से आत्मा रूपी रथी केवल तभी इस भयानक भवसागर को पार कर सकती हैं जब सारथी रूपी बुद्धि केवल आत्मा के ही अधीन कार्य करे - और

मन को आत्मा बुद्धि की ज्ञान रूपी डोर से निरन्तर बांध कर रखे । फिर इस मन रूपी लगाम से अपनी ईन्द्रियों को निरन्तर बस में कर अपने अधीन रखे और रथ रूपी जीवन को पूरी ईमानदारी और पुरूषार्थ विशेष के साथ हाके - केवल और केवल तभी यह मनुष्य जीवन रूपी रथ " रथी आत्मा " को अपनी मजिल विशेष तक पहुंचाने में पूरी तरह से कारगर सिद्ध विशेष हो सकता हैं .....!

जिस चीज़ का तुझे गर्भ जून में आभास हुआ था और तुने भरोसा कर उसे जपा-आराधा था, मूर्ख प्राणी क्या पैदा होने के बाद उसने तुझे त्याग दिया हैं .....? जरा सोच-विचार - जिसने तुझे उस कुम्भी-पाक रूपी भयानक नर्क विशेष से मुक्त कर दिया था - लगातार ज़िंदा विशेष रखा था - फिर क्या अब तू फिर से उस पर भरोसा करे और पूरी ईमानदारी से पुरूषार्थ विशेष करे - अपनी जिम्मेदारियों से भरी पूरी जिन्दगी में - तो क्या वो तुझे अब भी इस अनन्त प्रकार की केवल तेरी ही बनायी हुई कीचडों विशेषो में पूरी तरह से डूबे रहने के बावज़ूद भी, तुझे बचाने में क्या वो आसमर्थ हैं.....? (गर्भ नर्क में भी तो तू पूरा का पूरा डूबा ही हुआ था .....?)

उस वक्त जो निरन्तर तेरे साथ था क्या अब वो कही तिर्थों में तैर रहा हैं या वैकुण्ठों में डुबकियां लगा रहा हैं या समुन्द्रों में नहा कर कर्म-काण्ड़ों में व्यस्त हैं - या पढ़ने-पढ़ाने अथवा गाने-

बजाने में डूबा हुआ हैं – कहीं वो मूर्तियों – रमजानों – किताबों – ग्रन्थों – गुरू-सतगुरूओं के रूपो में अपना ब्लात्कार तो नंही करवा रहा .....? शायद उसे रण्ड़ी बन कर संसार रूपी चकला चलाने में कंही रस तो नंही आने लग गया .....? कंही दिपक में बाती बना कर वो अपने को जलाता हुआ अपने पापों का प्रायश्चित तो नंही करने लग गया निरन्तर तड़पता हुआ .....? अरे मूर्ख जीव, जब वो पहले भी केवल तेरे अपने ही अंदर था तो अब तुझे वो कैसे बाहर दूसरी महान संसथाओं में मिल सकता हैं .....? अब अगर तू सच में बचना और उस से मिलना – तक पहुंचना चाहता हैं तो उसे केवल तुझे अपने अंदर ही तालाश करना होगा – दोनो आँखो के बीच, उसकी कन्सन्ट्रेट मात्रा निरन्तर उपलब्ध विशेष रहती हैं । उसे तू देख नंही सकता क्योंकि तू अपनी ही अनन्त कीचड़ों में डूबा हूआ हैं – पर ये भरोसा तो तू कर ही सकता हैं कि वो तो तुझे लगातार देख ही रहा हैं – इसका ज्ञान तो तुझे जब तू गर्भ-नर्क में तड़प-चिल्ला रहा था तब भी हुआ ही था और तूने उसे जपा-आराधा-ध्यान-भरोसा भी किया ही था " बिना देखे " – और फिर तू शांत विशेष हो कर के समाधि विशेष में चला गया था – तभी तो तू उस भयानक किचड़ रूपी महानर्क विशेष से बचा था .....! अब भी तुझे केवल यही करना हैं पूरी सच्चाई-ईमानदारी से संसारिक नेक पुरूशार्थ कमाना हैं और स्वंय की जिम्मेदारियों को पूरी तरह से निभाते हुऐ शेष साधन-सम्पत्ति –

समर्था - स्वांस पूंजी को उसे अराधते हुऐ निरन्तर समाज में जरूरतमंदो को लौटाना विशेष हैं - याद रहे इसका पोज्टिव नतिजा विशेष तुझे तभी प्राप्त होगा जब तू केवल अपने जीते जी स्वंय को अपने ही हाथो से उस का धन्यवाद विशेष करते हुऐ लौटायेगा .....! केवल तभी तू ध्यान से समाधी में उस से रूबरू लीन होगा.....! केवल पूजा-ध्यान तीर्थ - गाना - बजाना पढ़ना-पढ़ाना - कर्म-काण्ड - व्रत - योग - दर्शन - दान धर्म ईत्यादि-ईत्यादि फोकट-फोकटईया ही हैं - ये सब का सब मन यानी के महाकाल का सुनहरी जाल विशेष ही हैं - जिस में जीव स्वंय ही दौड़-दौड़ कर डूबना पसंद करता हैं - सुहागन होना भूले से भी नंही .....? याद रख उसके सिवा दूसरा और कोई भी महान से महानतम केवल महादुखों का पिटारा ही साबित होगा.....! जो भी करना हैं केवल तुझे ही करना हैं - और केवल अपने को ही मुक्त करना हैं - जो केवल उसी के द्वारा होना हैं - शेष सभी के लिये भी केवल वही मुक्त-उपलब्ध विशेष हैं " निरन्तर " केवल इसी कार्य विशेष के हेतू - और वो केवल और केवल तभी तुझ और अग्रसर होगा जब तू सच्चे मन से उसे पुकारेगा अपने ही अन्तर में न कि बाहर कर्म-काण्डों में .....? यह कार्य बिना " मन " को शामिल किऐ न तो आज तक कभी किसी का सम्पन्न हुआ हैं, न ही हो रहा हैं और ना ही कभी होगा भविष्य में भी .....! चयन केवल तेरा ही गिना जायेगा न कि भीड़ - संस्था - धर्म - मत -

कर्म काण्ड़ का, इसीलिये प्रत्येक स्वांस खूब सोच - विचार - फूंककर खर्च विशेष कर - यह बहुत ही दुर्लभ - कीमती और सीमित विशेष हैं - पता नंही कब खत्म विशेष हो जाये .....?

➤ कान खोल कर ध्यान से सुन तथा पढ़ ले इस सृष्टि में " प्रार्थना और माफी " जैसी कोई भी चीज कल्पना में भी विचारिक रूप से भी नंही हैं - न कभी थी और आगे भी न कभी होगी .....? और न दी कभी भी किसी को बिना कमाये अथवा कीमत चुकाये कुछ भी मिला हैं, न मिल रहा हैं और न ही कभी कुछ भी मिलेगा .....? सभी केवल अपने ही कमाये हुये नतीजेभोग अथवा भुगत विशेष रहे हैं - यही बेसिक पैट्रन हैं इस से कोई भी भगवान जैसा या उस से भी बड़ कर न बचा हैं, न बच रहा हैं और न ही कभी बचेगा - देर सवेर सभी ने उस (+ & -) को देखना अथवा भुगतना ही हैं .....?

फिर भी अगर आप नहीं मानते हैं तो बता देते हैं आप को माफी अथवा प्रार्थना की सरल - सीधी - और सच्ची परिभाषा .....? आपनी नीजि कमाई हुई सभी प्रकार की ठगियों - चालाकियों - ब्लातकारों - चोरियों - मनुष्य को गुमराह करने वाले तरिको और कर्म काण्ड़ो इत्यादि - इत्यादि सभी मनसूबों को सच्चे मन से " व्यवहारिक रूप " से स्वीकार कर विद ईन्ट्रेस्ट पूरी ईमानदारी से भुगतना तथा आगे के लिये पूरी ईमानदारी से सदा के लिये पूरी तरह से " व्यवहारिक तौबा विशेष " केवल इसी

के बाद आप का गिड़ गिड़ाना सुना जायेगा .....! इस के सिवा परमार्थ का और कोई भी सच्चा और पायेदार रास्ता हैं ही नहीं - न था - न होगा .....? शेष सभी अमृत - नाम - पंथ - मत - धर्म केवल भ्रमात्मक फोकट - फोकटइया ही साबित होगे, ठीक आपकी आँख बंद होते ही जब कोई आपको बालो से पकड़ कर घसीट कर ले जायेगा .....?

- मनुष्य की जून में जीव का जन्म केवल मनुष्य बनने अथवा मनुष्यता कमाने के लिये ही हुआ हैं न कि हिंदु - सिख - ईसाई - मुसलिम - हाजी - तीर्थि - पंथी - योगी - रागी - नादी ईत्यादि ईत्यादि बनने या बनाने के लिये ये सभी कर्म-काण्ड़ दूसरे खिलाड़ी काल का अपने अंश मन द्वारा फैलाया गया केवल एक प्रकार का सुनहरा " ड़िस्ट्रकशन " विशेष मात्र ही हैं - आत्मा को यहीं रोकने तथा सृष्टि कोरोशन रखने का एक बढ़िया सा पैंतरा विशेष .....? जबरदस्ती कुछ नहीं हैं, न काल कर सकता हैं क्योंकि वो भी केवल अकाल की ही एक सुन्दर समर्थ अनन्तानन्त प्रकार की एक दुर्लभ प्रत्यक्षता विशेष ही हैं .....?
- जिन ठगियो - चालाकियों - ब्लातकारो के विभिन्न ढ़ंगो प्रकारो से आज धर्म - नितियां चलायी जाती आ रही हैं उन के बहुत ही खोफनाक भयावने नीतिजे निकल चुके हैं ...? फिर भी सृष्टि चल रही हैं तो कोई इस कमाये और उगले हुऐ जहर को पी

रहा हैं ताकि कमाया हुऐ सत का अंश रूपी मनुष्य जन्म सरवाईव कर सके .....! वरना जीव ने तो हैवानियत की भी सभी हदें अपने बहुत ही पीछे छोड़ दी हैं । थोड़े लफ्ज़ों में - ये सभी जीव केवल पूरी तरह से डूबे चुके जहाज के मुसाफिर हैं - फिर दिख कैसे रहे हैं .....? यह भी एक धोखा या भ्रम ही हैं क्योंकि पल-पल ये केवल उस भयानक नर्क रूपी मौत की ओर ही अग्रसर हैं - जो इन्हे बड़े गन्दे ढ़ंग से सदा के लिये अपने में समेटने हेतु तड़प विशेष रही हैं .....?आप बाहरी पर्ते उतारने में ही उलझ रहे हैं सदा से - और कोई पूरी तरह से आप को लूट कर ले जाता रहा हैं - अर्थात आत्मा अन्धी ही पैदा होती हैं और महाअन्धी बन कर दूसरो को भ्रमाती-भटकाती हुई सदा के लिये एक बार फिर से महा अन्धकार में गुम हो जाती हैं .....! प्रकाश केवल जीते जी ही कमाया जा सकता हैं । आँख बंद हो जाने के बाद तो केवल नतिजो का केवल भयानक अंधकार मात्र ही शेष बचता - उपलब्ध विशेष होता हैं ।

- पानी-हवा के जीवो - वातावरण से पूरी तरह से तटस्थ रहना - दखल न देना ही जीव के लिये लाभकारी हैं ।
- ईन्द्रियों को सीमित रखना जरूरत तक तथा उन के संसाधनों को निर्मित-पोषित - रिजर्व रखना आवश्यक हैं ।
- सभी का स्वास्थय - शिक्षा - भोजन - सुरक्षा - आत्मसम्मान - कार्य का निशुल्क अधिकार उपलब्ध

रखना ही पुरूषार्थ हैं – क्योंकि जब एक जीव मनुष्य के रूप में इस धरती पर अवतरित होता हैं तो कम से कम एक हजार से अधिक का " पोषण-संसाधन " वैधानिक रूप से प्रकृति से पहले ही उपलब्ध करा दिया जाता हैं जिन्दगी भर के लिये – फिर भी अस्सी प्रतीशत जीव मनुष्य जून वाले कैसे आधारभूत हवा-पानी-भोजन-सुरक्षा से दूर कर दिये जाते हैं .....? केवल कुछ चन्द विकृत मानसिकता वाले जीवो की वजह से .....! सावधान, केवल बड़े ही गन्दे ढ़ंग से भुगतने के लिये त्यार रहो – अंतिम घड़ी दूर नंही हैं ।

- प्रजा राज में प्रजा का ही शोषण-ब्लातकार वो भी प्रजा के ही बनाये ढ़ंग को तोड़-मरोड़ कर प्रजा के ही अन्धे नुमायदों द्वारा बुद्धिजीवियों को हां कना .....?
- जीव को भूखा – प्यासा रख कर कौन सा खेल – खेल हो सकता हैं .....? तुरन्त इस स्पर्धा से दूर रहना...! बन्द करना ...!
- कोई भी लक्सरी –साधन–सम्पति सोच–स्पेस–समुद्र इत्यादि कभी भी मूल के सामने - " तुच्छ " भी हो सकती हैं ...?
- शेष सभी महान भण्ड़ार – सभयताये जो मनुष्यता कि कब्र पर बनाये – खड़े किये गये हैं केवल महाघौर भयानक तड़पने वाला नर्कों का ही भण्ड़ार विशेष हैं – सभी विशेष महान-महानतम जीवों- सभयताओ के लिये .....? जो उन से गले मिलने के लिये तड़प विशेष रहा हैं ...?

- मूर्ख जीव गद्धियों-तख्तों पर विराजमान हैं, बुद्धिजीव घुटने टेक कर नाक रगड़ रहे शिज़दा कर रहे हैं.....? फिर भी सब मनुष्यता कमा रहे हैं .....? ऐसा भ्रम कैसे सभी पाले हुऐ स्वंय को दूसरो से अधिक मुक्त समझ विशेष रहे हैं .....!
- शोषण की सोच और चढ़ावे पर जुगाली की नज़र रखने वाला पुरूषार्थहीन प्राणी कभी भी " सच के ताप " को अनुभव अथवा महसूस कर ही नंही सकता - यही विधि का वैधानिक सच विशेष हैं .....?
- व्यवहारिक समर्पण अथवा कन्फैशन (confession) का भाव हैं पूरी तरह से जीव स्वंय को मूल के हवाले करे यानि के निरन्तर अपने आधार की शरण में मन सहित शरणार्थी बने पूरी सच्चाई और ईमानदारी से ...! ऐसा नंही कि पहले किये गये कुकृत्यों से ऐक्त्र साधन-सम्पत्तियों का भंण्ड़ार जो बाहर दूर कंही भी छुपाया गया हैं नामी-बेनामी ढंग से - जिस कारण शेष जीवों को आधारभूत आवश्यकताओं से वचित हो कर दुख-दर्द से तड़पना विशेष पड रहा हैं - उन्हे सब के सामने प्रत्यक्ष करे यानि के उन के आधारभूत अधिकारों को पूरी ईमानदारी से लौटाये और स्वंय इस यज्ञ का व्यवहारिक हिस्सा बन कर अपने को फिर से पवित्र करे...!
- पवित्रता का सम्बंध केवल मन और आत्मा से ही हैं । शेष सभी घर्म - प्रभु - स्थान - तीर्थ - जल -

ग्रन्थ ईत्यादिओ का सम्बंध केवल सफाई या गन्दगी से ही हैं । पवित्र या पाक होना केवल मन-आत्मा का कमाने का निजि विषय विशेष हैं जो केवल मनुषय जन्म में ही कमाया जा सकता हैं और किसी भी जून में यह सोचना भी केवल असम्भव ही हैं । अगर कोई ऐसा मार्गदर्शन कही मिलता हैं भाग्य यानि कमाई पूर्व के नतिजो से तो कम से कम उस मार्गदर्शन हेतु एक धन्यवाद तो बनता ही हैं ...! क्योकि इसी मार्ग पर मन-आत्मा चल कर कभी न कभी किसी काल विशेष मे सभी दुखों-अभावों से अवश्य ही मुक्त विशेष हो ही जायेगी, यह तो सदा से निश्चित ही हैं । क्योंकि अनन्त जन्म काल के कुकृत्यों का निपटारा कभी भी कुछ काल विशेष में कभी भी सम्भव ही नंही हैं । एक जन्म चाहिये निरन्तर चींटी के प्रयास जैसा "हार न मानना" अर्थात ये सभी कुकृत्य आप के आप को अपनी ही देह विशेष पर भुगतने होगे अर्थात आप को अपना ही भार विशेष पूरा का पूरा ब्याज सहित ढोना ही होगा । केवल पूरा ढोने के बाद ही सत की सुबह का प्रकाश अनुभव होगा ।

- मूल स्वंय निरंकार हैं और सभी आकार-रूप-समर्था-प्रकृति उसी का ही एक सुंदर-विकृत-पूरा-अधूरा बराबर लबालब प्रत्यक्ष होना ही हैं इस में और नाम-अमृत की कोई भी कणमात्र भी गुंजाईश ही नंही हैं ...! अगर कोई महान कहता हैं तो वो गुमराह केवल गुमराह ही कर रहा हैं ...!

- प्रकृति और आत्मा दोनो एक ही हैं, मूल की प्रत्यक्षता भरपूर निरन्तर – फर्क केवल इतना हैं कि प्रकृति का चरित्र निश्चित हैं और आत्मा को बुद्धि विशेष मिली हैं अपना चरित्र घड़ने के लिये और प्रकृति मिली हैं उसे जानने और समझने के लिये जिसे आप साईस(विज्ञान) कहते हैं – जिसमे सदा से पल्स-माईनस की क्षमता बनी ही रहती हैं – अत! जीव को इसे विचार सोच कर ही अपने साधन हेतु प्रयोग में लाना चाहिये क्योकि जीव के प्रत्येक चयन का नतीजा हर काल में निश्चित ही हैं जो केवल उसे ही भुगतना होगा ...! नतीजा जितना देर बाद प्रत्यक्ष होगा (+ या –) उस पर उतना ही ब्याज अधिक मिलेगा (+ या –) – इसलिये बुद्धि द्वारा सोच समझ कर ही आगे कदम बढ़ाये ।
- उस का संगृहित अनुभव केवल मनुष्य जून में ही संभव हैं शेष प्रकृति मन से सम्बन्धित हैं इसलिये मन मेहनत की बजाये आसान रासता अपना ईन्द्रियों के जरिये प्रकृति के संसाधनो कि ओर आकर्षित होता हैं – जिस में सभी प्राणियों सहित आपका अपना शरीर भी शामिल हैं " पांच तत्वों " का भरपूर चमतकारी संयोग विशेष । दूसरे के आवरण पर मोहित हो उसमे डूब जाना अपराधिक कृति को जन्म देता हैं यही एक पैंतरा हैं इस खेल के खिलाड़ी का, जो और विभिन्न अपवादों को जन्म दे जीव को इन्ही में उल्झा कर उसे उस के मार्ग से

भटका देता हैं । अर्थात केवल जड़ प्रकृति (अग्नि - जल - वायु पृथ्वी के रूपों) में उस की तलाश केवल भटकना विशेष ही हैं । केवल अपने आवरण (जो कि वो भी केवल जड़ प्रकृति ही हैं) में ही सच्चे पुरूषार्थ सहित निरन्तर प्रयत्न विशेष से ही यह मेल सम्भव होता हैं । आत्मा पर चढ़े सभी (+ & -) पूर्व कमाये नतीजो के आवरणो को उतारने अथवा भोगने के बाद ही .....!

"आंख मीच मग सूझ न पाई - ताही अनन्त मिले किम भाई ।"

"कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठि रहिओ बक धियान लगाइओ । न्हात फिरिओ लिए सात समुन्द्रन लोक गइओ प्रलोक गवाइओ । बासु किओ बिखिआन सों बैठ के ऐसे ही ऐस सो बैस बिताइओ । साचु कहों सुन लेहु सभै । जिन प्रेम किओ तिन ही प्रभ पाइयो ।"

"कई जन्म भये कीट पतंगा - कई जन्म गज-मीन-तुरंगा कई जन्म पंखी - सरप-होयओ - कई जन्म हैवर बिख्र जोहयो मिल जगदीश मिलन की बरिया - चिरन्काल एह देह संजरिआ "